तत्व बोध पुस्तक है

आगामी २७ व [illegible]वरी, शनिवार व सोम

स्थान सैबसू

पंडित श्री कृष्णदत्त पालीवाल, श्री विश्वम्भ
[illegible]मती उमानेहरू, तथा सूबे के अन्य बड़े २ नेता भी

आपको यह [illegible] कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमारी तहसील
[illegible]क" सम्पादक साहित्य रत्न पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल एम. ए.,प
[illegible]व में २७ व २८ जनवरी को होना निश्चित हुई है। साढ़े तीन व
[illegible]र प्राप्त हुआ है कि हम फिर अपनी कांफ्रेन्स का खुला अधिवेशन
[illegible] को दोनों दिन बड़ा भारी कांग्रेस जमाव होगा क्योंकि सूबे के
[illegible] रहे हैं। इसी अवसर पर तहसील "सैनिक कांफ्रेन्स" भी
[illegible] सभापति होंगे सूबे कांग्रेस कमेटी के मंत्री श्री विश्वम्भर दया
[illegible]एल. बी। सन १९३२ के आन्दोलन के सब जेल यात्रियों को पुरस्
[illegible]र्ताओं की एक विशेष बैठक भी होगी, जिसमें प्रमुख नेताओं के भाषण हो
सोमवार को एक "तहसील महिला कांफ्रेन्स" होगी और यह हमारे बड़े भा
बात है कि इसकी सभा नेत्री होंगी सूबे की एक प्रम [illegible] नेहरू

* श्रीः *

श्रीमच्छंकरावतारश्री १०८ युत श्रीशंकरा-
चार्यभगवत्पादविरचितः ।

तत्त्वबोधः

व्याकरणाचार्यपण्डित मदनमोहनपाठक
कृतभाषानुवादसहितः ।

प्रकाशक-

मैनेजर—भार्गव पुस्तकालय, काशी ।

(केवल आवरण पृष्ठ)

निज भार्गवभूषण प्रेस, काशी में मुद्रित ।

मूल्य ।

॥ श्री ॥

श्रीमच्छंकरावतारश्री १०८ युतश्रीशंकरा-
चार्यभगवत्पादविरचितः ।

तत्त्वबोधः

व्याकरणाचार्यपण्डित मदनमोहनपाठ-
ककृतभाषानुवादसहितः ।

जिसे

मैनेजर भार्गव पुस्तकालय ने

फाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग वर्क्स, में छपवाकर
प्रकाशित किया ।

सन् १९२४ ई० ।

उपोद्घात ।

संसारी मनुष्यों को सदा सुखकी इच्छा बनी रहती है। वे, सदाही सुखके लिये लाला-यित रहते हैं। कोई पुत्र के लिये दुखी रहते हैं । और कोई धन लिये माथा पच्ची किया करते हैं। इन मे कितनेही पुत्रवान भी होजाते हैं, और कितने धनवान् भी होजाते हैं। तब भी वे दुखी ही दिखाते हैं। जो कुछ ये चाहते थे उसे पाकर भी इन्हे दुखी देख यह प्रश्न होता है कि क्या हम जिसे सुख देने वाला समझते थे वह सुख देने वाला नहीं है? इस प्रश्न के उत्तर में हम बहुत कुछ हाथ पैर मार-कर भी जब कोई सजह उपाय नहीं देखते तब तत्त्वदर्शी गुरु की शरणही एक आधार दिखाता है। कृपालु गुरु हम से कृतघ्नों पर भी दया करके

योग्यता के अनुसार हमें वेद के मुख्य सिद्धान्तों का उपदेश करते हैं जिसके विचार से हम सुख रूप मोक्षपद पाते हैं।

जिन वैदिक सिद्धातों से हमें सुख होता है, उन्हें विद्वान् लोग उपनिषद् अथवा वेदान्त कहते हैं। वेदान्त शास्त्र बडा गहन और विचार करने का विषय है। वह विषयी लोगों के मनमें सहजही में नहीं आता, यह बिचार कर श्री १०८ मान् भगवान् शङ्कराचार्यजीने अल्पज्ञ लोगों के लिये 'तत्त्वबोध' नामका एक छोटा सा ग्रन्थ बनादिया है। इस उपाय से मानो वेदान्त समुद्र को आचार्यपाद ने बावली बना दिया। इतने पर भी यह ग्रन्थ संस्कृत में होने से सबको सुलभ नहीं होता इससे बनारस भार्गवपुस्तकालय के मैनेजर ने मुझसे इसको सरल भाषा में अनुवाद करने

को कहा। उक्त मैनेजर साहब की आज्ञानुसार मैंने इसका भषानुवाद कर दिया। जहां तक बना वहां तक भाषा सरल करने का उद्योग किया गया है। आशा है जिज्ञासु लोग इस ग्रन्थ से वेदान्त के गूढतत्त्व को सहज में समझ सकेंगे।

यदि जिज्ञासु जन इससे लाभ उठावेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा' और और ग्रन्थ भी उनकी सेवा में भेजूंगा। मैंने बड़ी सावधानी से इस ग्रन्थका अनुवाद किया है। इतने परभी यदि कहीं अशुद्धियां रह गई हों तो दया कर उसे पाठक महोदय सुधार लेवें ॥

आपका हितकर
पं० मदनमोहन पाठक
गायघाट बंगाली बाड़ा
श्री काशी क्षेत्र।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

अथ तत्त्वबोधः प्रारभ्यते।

हम आस्तिक लोग जब किसी कार्यको आरंभ करते हैं तब मंगलाचरण अवश्य करते हैं। इस विषय में हमारा विश्वास है कि मंगला चरण से दो बात होती है। पहिली बात विघ्न का नाश और दूसरी उस कार्य की समाप्ति जिसके प्रारंभ में हमने मंगलाचरण किया था। हमारा सिद्धान्त है कि प्रत्येक कार्य की सिद्धी में जैसे उसकी सामग्री की आवश्यकता है वैसे ही विघ्नों का नहोना भी आवश्यकता है जैसे

उन २ सामग्रियों से वे २ कार्य सिद्ध होते हैं वैसेही विघ्नों के न होने से भी कार्य सिद्ध होते हैं। जैसे ग्रंथ समाप्ति में कारण सामग्री बुद्धि कल्पना और सदसद्विवेक आदि हैं वैसेही एक विघ्न का न होना भी है। इसलिये ग्रंथ के आरम्भ में मंगल करना आवश्यक जान पड़ता है। इस परिपाटी के पालन से हमें एक लाभ और होता है जिसे हमलोग परंपरा कहते हैं। यदि हम लोग मंगलाचरण करते हैं तो हमें यह विश्वास होता है कि यदि कदाचित् हमारे शिष्यगण भी ग्रंथ बनावेंगे तो वेभी मंगलाचरण करेंगे। यही कारण हुआ कि हम मंगलाचरण का ग्रंथ का एक अंग मान कर उसे ग्रंथ के आदि में मिलादेते हैं और उससे एक उत्तम परिपाटी का निर्वाह करते हैं। अब हमें यहभी विचारना आवश्यक है कि हम किस देवता का मंगला

चरण करें ? इस विचारका निर्णय ग्रन्थकेविषय पर ही निश्चित है अतः जिस ग्रन्थ में जो विषय हो उसी के अनुसार मंगलाचरण भी होना उचितहै

इसी अनादिसिद्धि परिपाटी का पालन करने की इच्छा से भगवान् शंकराचार्यजी (तत्त्व बोध) के प्रारंभ में मंगलाचरण कहते हैं।

(मूल) वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं नत्वा ज्ञानप्रदं गुरुम् ॥ मुमुक्षूणां हितार्थाय तत्त्वबोधोऽभिधीयते ॥ १ ॥

अर्थ-मोक्ष साधन ज्ञानके देने वालेयोगियो में श्रेष्ठ वासुदेवेंद्र योगिराज गुरु को प्रणाम करके। मोक्षपद की चाहना करने वाले मनुष्यों के लिये तत्त्वबोध का कथन करता हूँ॥ १ ॥

(मूल) साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणां। मोक्षसाधनभूतंतत्त्व विवेकप्रकारंवक्ष्यामः॥ २ ॥

(अर्थ) मोक्षपद की प्राप्तिके चार प्रकार के उपायों को साधने वाले अधिकारि जनों के लिये जो मोक्ष में साधन है उस तत्वों के भेद विचार को कहता हूं जगत् का उपादान कारण सत चित आनंद रूप परमेश्वर है। वही माया के आवेश से जीव अवस्था को प्राप्त होता है और पृथ्वीजल तेज वायु और आकाश में अपना रूप देखता है। तत्व के बोध से वह पंचमहाभूत से अपने को अलग समझता है। इससे तत्व बोध का प्रकार कहना अति आवश्यक है ॥२॥

(मूल) साधनचतुष्टयं किम् ? नित्यानित्यवस्तुविवेकः, इहामुत्रार्थफलभोगविरागः, शमदमादिषट्कसम्पत्तिः, मुमुक्षुत्वं चेति ॥ ३ ॥

(अर्थ) मोक्ष के चारो साधन कौन कौन हैं ? नित्य पदार्थ और अनित्य पदार्थ का भिन्न भिन्न ज्ञान; इस लोकके और परलोक के पदार्थ और उनसे होने वाले फलों में वैराग्य; शम दम, आदि छहो पदार्थों का सम्पादन; और मोक्षपद की इच्छा; येही चारो साधन हैं ॥ ३ ॥

(मूल) नित्यानित्यवस्तु

विवेकः कः ? नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म, तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यम्, अयमेवनित्यानित्यवस्तुविवेकः ॥ ४ ॥

(अर्थ) नित्य पदार्थ और अनित्य पदार्थ का विवेक किसको कहते हैं ? नित्य पदार्थ केवल ब्रह्म है। उसको छोड़कर और जितने पदार्थ हैं सब अनित्य अर्थात् मिथ्या वा असत् हैं। इसी ज्ञान को नित्यानित्य वस्तु विवेक कहते हैं ॥ ४ ॥

(मूल) विरागः कः ? इह-स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम्

(अर्थ) विराग किसे कहते हैं ? इस लोक के और स्वर्ग आदि परलोक के सुख आदि भोग की इच्छा का त्याग करना । अर्थात् इस लोक और परलोक के सुख भोग की वासना को हटा देना । इसे विराग कहते हैं ॥ ५ ॥

(मूल) शमादिशाधन सम्पत्तिः का ? शमदमउपरातिस्तितिक्षा श्रद्धा समाधानं चेति ॥ ६ ॥

(अर्थ) शम आदि साधनों की संपत्ति का क्या अर्थ है ? शम दम उपरम तितिक्षा श्रद्धा और समाधान, इन छहों साधनों का होना शम आदि साधन संपत्ति कहाता है । शम शांति दम इन्द्रियों का रोकना' उपरम कर्तव्य का अन

ष्ठान, तितिक्षा शीतादि का सहना' श्रद्धा गुरू आदि के वाक्य में विश्वास' समाधान चित्तकी एकाग्रता, येही छः साधन हैं ॥ ६ ॥

(मूल) सम कः ? मनोनिग्रहः । दम कः ? चक्षुरादि बाह्येन्द्रियनिग्रहः । उपरमः कः ? स्वधर्मानुष्ठानमेव । तितिक्षा का ? शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम् । श्रद्धा कीदृशी ? गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा ।

समाधानं किम् ? चित्तैका ग्रता ॥ ७ ॥

(अर्थ) शम किसे कहते हैं ? मन के रोकने को शम कहते हैं। दम का क्या अर्थ है ? नेत्र कर्ण जिह्वा घ्राण और त्वचा आदि बाह्य इन्द्रियों के रोकने को दम कहते हैं। उपरम किसे कहते हैं ? अपने निज धर्मका ही अनुष्ठान करना। अर्थात् शब्द आदि विषयों से इन्द्रियों को रोककर और सब लौकिक विचारों से हटा कर केवल आत्मविचार में तत्पर रहना; इसे दम कहते हैं। तितिक्षा किसे कहते हैं ? शीत उष्ण; सुख दुःख मान अपमान आदि का धैर्यसे सह लेना इसे तितिक्षा कहते है। श्रद्धा कौन सी वस्तु का नाम है ? गुरु के वाक्यों को और वेदान्तके वाक्यों को विश्वासपूर्वक यथार्थ सम-

क्षना श्रद्धा कहाती है। समाधान क्या अर्थ है? चित्त की एकाग्रता को अर्थात् गुरु और वेदान्त के वाक्यों का एकान्त में विचार करना वा उसे और अधिकारि को बताना समाधान कहाता है। इन्हेंही शम आदि छः साधन कहते हैं॥ ७॥

(मूल) मुमुक्षत्वं किम्? मोक्षो मे भूयादितीच्छा।८।

(अर्थ) मुमुक्षुत्व का क्या अर्थ है? मेरा मोक्ष होवे ऐसी इच्छाका होना। अर्थात् मुझे किसी प्रकार के सांसारिक दुःखों से संयोग न हो इस इच्छा वालेको मुमुक्षु कहते हैं॥ ८॥

[मूल] एतत्साधनचतुष्ट

यम् । ततस्तत्त्वविवेकस्याधिकारिणो भवन्ति । तत्त्वविवेकः कः? आत्मा सत्यस्तदन्यत्सर्वं मिथ्येति ॥

(अर्थ) ये चारों मोक्ष के साधन हैं। इनकी साधना के अनन्तर तत्त्वविवेक के अधिकारी होते हैं। अर्थात् इन चारों की साधना से वह तत्त्वज्ञान होता है जो महाभूतों से आत्मा को भिन्न सिद्ध कर देता है। तत्त्वविवेक किसे कहते हैं? आत्मा सत्य है; और उसके सिवाय और जितनें जगत् के पदार्थ हैं वे सब मिथ्या हैं; इसी को तत्त्वविवेक कहते हैं ॥ ६ ॥

[मूल] आत्मा कः? स्थूल

सूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तः पञ्चकोशातीतः सन्नवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपः सन् यस्तिष्ठति स आत्मा

(अर्थ) आत्मा किसे कहते हैं ? स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर से अन्य; अन्नमय आदि पाँचो कोशों से दूर और जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन अवस्थाओं का साक्षी होकर जो सत् चित और आनन्दस्वरूप हो रहता है उसे आत्मा कहते हैं। अर्थात आत्मा वह है जो स्थूल सूक्ष्म और कारणशरीर से अलग है जो अन्नमय प्राणमय आदि पांचो कोशों से दूर है, जो जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति का साक्षी है और जो सत् चित आनंदरूप है ॥ १० ॥

(मूल) स्थूलशरीरं किम्?
पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृत
सत्कर्मजन्यं सुखदुःखादिभो
गायतनं शरीरं, अस्ति जा
यते वर्धते विपरिणमते अप
क्षीयते विनश्यतीति षड्वि
कारवदेतत्स्थूलशरीरम्।११।

(अर्थ) स्थूलशरीर किसे कहते हैं ?। पञ्चीकृत पृथिवी जल तेज वायु और आकाश आदी पांचों महाभूतों से किया गया, कर्मों के द्वारा उत्पन्न' सुख और दुःख आदि के भोगने का प्रधान आश्रय, नाश होनेवाला, और स्थिति

उत्पत्ति बृद्धि घटना बढना ढीलापड़ना और नाश रूप छहों विकारवाला स्थूलशरीर कहलाता है। तात्पर्य यह है कि पृथिवी आदि पांचों महाभूतों के पञ्चीकरण से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। महाभूतों के पञ्चीकरण का यह प्रकार है कि प्रथम आकाश को दो भागो में बांटकर एक भाग को अलग रखदेना। फिर दूसरे भाग को चार भाग में बांट कर अलग रखे हुए आधे भाग को इसी प्रकार बांटे गये वायु के भागों में मिला देना। इसी भांति वायु का विभाग करके उसे तेज भागमें मिला देना, तेज भाग को बांट कर जल भाग में मिला देना। जल को बांट कर पृथिवी में मिला देना। इन्हीं भागों के मिलाव को पंचीकरण कहते हैं। इसी पंचीकरण अवस्था का नाम स्थूल शरीर है। जब फिर पृथिवी आदि भूतों के भागोंको

अलग २ करके अपने २ कारण महाभूतों में लीन कर देते हैं तब स्थूलशरीर का नाश हो जाता है। इस स्थूल शरीर के सहायक उपादान कारण शुभ अशुभ कर्म हैं। शुभ अशुभ कर्मों से सुख दुःख का भोग उत्पन्न होता है । स्थूल- शरीर इनका भोग करता है । इस स्थूलशरीर की छः अवस्था होती हैं। प्रथम अवस्था अस्ति है। अस्ति शब्द का अर्थ है सत्ता, अर्थात् उत्पन्न होना। द्वितीय अवस्था जनन, अर्थात् उत्पन्न होना है। तृतीय अवस्था वर्धन अर्थात् कदाचित् बढ़ना और कदाचित् घटना । चतुर्थ अवस्था विपरिणाम अर्थात् क्रम से बढ़ना। पंचम अवस्था अपक्षय, अर्थात् वृद्ध आदि होने पर शरीर का शिथिल होना। और छठवीं अव- स्था नाश अर्थात् शरीर का पात होना। इसी को लोग स्थूलशरीर कहते हैं॥ ११ ॥

[मूल] सूक्ष्मशरीरं किम् ! अपञ्चीकृतपंचमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यंसुखदुःखादि भोगसाधनं पंच ज्ञानेन्द्रियाणि पंच कर्मेन्द्रियाणि पंच प्राणादयः मनश्चैकं बुद्धिश्चैका एवंसप्तदशकलाभिः सहयत्तिष्ठति तत्सूक्ष्म शरीरम् ॥ १२ ॥

(अर्थ) सूक्ष्मशरीर किसे कहते हैं ?। अपञ्चीकृतपृथिवी आदि पाचों महाभूतों से बना, कर्मों

से उत्पन्न, सुख दुःख आदि के भोगने का साधन, पांच ज्ञान इन्द्रियों के पांच कर्म इन्द्रियों के,पांच प्राणों के, एक मन के, और एक बुद्धि के, इस भांति सत्रह कलाओं के साथ जो रहता है वह सूक्ष्मशरीर कहाता है। अर्थात् सूक्ष्मशरीर में पंचमहाभूतों के पचीस भाग नहीं होते। कर्म उसका सहायक है। वह सुख दुःख का भोगनेवाला है। उसमें नेत्र कर्ण श्रवण नासिका और स्पर्श इन्द्रियां रहती हैं। वाक् हस्त पाद गुदा और उपस्थ भी रहते हैं। प्राण व्यान समान उदान और अपान आदि प्राण भी रहते हैं। मन भी रहता है। और बुद्धि भी होती है। इन्हीं सत्रहों कलावाले शरीर को सूक्ष्मशरीर कहते हैं॥ १२॥

(मूल) श्रोत्रं त्वक् चक्षुः र

सना घ्राणमिति पंच ज्ञाने
न्द्रियाणि । श्रोत्रस्य दिग्देव
ता । त्वचो वायुः । चक्षुषः
सूर्यः । रसनाया वरुणः । घ्रा
णस्याश्विनी इति ज्ञानेन्द्रि
यदेवताः । श्रोत्रस्य विषयः
शब्दग्रहणम् । त्वचो विषय
स्पर्शग्रहणम् । चक्षुषो वि
षयो रूपग्रहणम् । रसनाया
विषयो रसग्रहणम् घ्राणस्य
विषयो गन्धग्रहणमिति १३

(अर्थ) श्रोत्र-कान, त्वक्-स्पर्श की इन्द्रिय, चक्षु-नेत्र, रसना-जिह्वा, और घ्राण नासिका, ये पाँचों ज्ञान इन्द्रिय हैं। श्रोत्र इन्द्रिय की देवता दिशा है। त्वक् इन्द्रिय की देवता वायु है। चक्षु इन्द्रिय की देवता सूर्य है। रसना इन्द्रियकी देवता वरुण है। घ्राण इन्द्रिय की देवता अश्विनीकुमार हैं। श्रोत्र इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान होता है। त्वक् इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान होता है। चक्षु इन्द्रिय से शुक्ल आदि रूपका ज्ञान होताहै। रसना इन्द्रिय से मधुर आदि रस का ज्ञान होता है। घ्राण इन्द्रिय से सुगन्धि और दुर्गन्धिका ज्ञान होता है।

[मूल] वाक्पाणिपादपायू पस्थानीति पंच कर्मेन्द्रिया

णिवाचो देवता वह्निः। हस्तयो रिन्द्रः। पादयोर्विष्णुः। पायोर्मृत्युः। उपस्थस्य प्रजापतिरिति कर्मेन्द्रियदेवताः। वाचो विषयो भाषणम्। पाण्योर्विषयो वस्तुग्रहणम्। पादयोर्विषयो गमनम्। पायोर्विषयो मलत्यागः। उपस्थस्य विषयो आनन्द इति

(अर्थं) वाक्-वाणी, पाणि-हस्त पाद चरण,

पायु-गुदा, और उपस्थ लिङ्ग ये पाचों कर्म इन्द्रिय हैं। वाक् इन्द्रिय की देवता अग्नि है। हस्त इन्द्रिय की देवता इन्द्र है। पाद इन्द्रिय की देवता विष्णु है। गुदा इंद्रिय की देवता मृत्यु है लिंग इंद्रियकी देवता प्रजापति है वाक्इंद्रिय से बोलते हैं। हस्त से वस्तुओंको ग्रहण करते हैं। पैरसे गमन करते हैं। गुदासे मलत्याग करते हैं। लिङ्ग से विषयानन्द करते हैं॥

(मूल) कारणशरीरं किम्? अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं शरीरद्वयकारणमात्रं सत्स्वरूपाज्ञानं निर्विकल्पकरूपं यदस्तितत्कारणशरीरम् ॥१५॥

(अर्थ) कारण शरीर किसे कहते हैं ? अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या रूप जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर का केवल कारण है, जो सत्त्व रूप अज्ञान है और जिस में किसी विशेषता का ज्ञान नहीं होता उसे कारण शरीर कहते हैं, तात्पर्य यह है कि कारण शरीर कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि माया कारण शरीर है माया अनिर्वचनीय है अर्थात् उसका स्पष्ट २ अर्थ नहीं हो सकता न तो उसे सत् कह सकते हैं, क्योंकि ब्रह्मज्ञान होने पर उसका नाश हो जाता है, और न उसे मिथ्या कह सकते हैं, क्योंकि फिर उससे जगत की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इससे उसे अनिर्वचनीय स्वीकार करते हैं। माया अनादि भी है और उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती। यही माया सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर का

कारण है। इसे सत्स्वरूप अज्ञान कहते हैं। इसमें किसी प्रकार के विशेष का सम्बन्ध नहीं होता। अत एव यही कारण शरीर है ॥१५॥

(मूल) अवस्थात्रयं किम्? जाग्रत्स्वप्न सुषुप्त्यवस्थाः॥

(अर्थ) तीन प्रकार की अवस्थाएं कौन२ हैं? प्रथम जाग्रत अवस्था है। द्वितीय स्वप्न अवस्था है। और तृतीय सुषुप्ति अवस्था है॥

(मूल) जाग्रदवस्था का? श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैः शब्दादिविषयैश्चज्ञायतेइति यत्सा जाग्रदवस्था। स्थूलशरीरा

भिमानी आत्मा विश्व इत्यु च्यते ॥ १७ ॥

(अर्थ) जाग्रत अवस्था किसे कहते हैं ? श्रोत्रत्वक् नेत्र रसना और घ्राण इन्द्रियों से जब शब्द स्पर्श रूप रस और गंध का ज्ञान होता है। उसे जाग्रत अवस्था कहते हैं। " स्थूल शरीर मेरा है" यह अभिमान करने वाला आत्मा विश्व कहलाता है। यद्यपि स्थूल शरीराभिमानीआत्मा अपनी अवस्था से भिन्नही है, क्योंकि वह नित्य है और उसकी अवस्था तथा स्थूल शरीर मिथ्या है तो भी स्थूलशरीर का अभिमान करने से आत्मा का नाम विश्व पड़ जाता है ॥ १८ ॥

(मूल) स्वप्नावस्था का ?

इति चेत् । जाग्रदवस्थायां यद्दृष्टं यच्छ्रुतं तज्जनित वासनया निद्रासमये यः प्रपञ्चः प्रतीयते सा स्वप्नावस्था। सूक्ष्मशरीराभिमानी आत्मा तैजस इत्युच्यते ॥

(अर्थ) स्वप्न अवस्था किसे कहते हैं ? जागते हुए जो कुछ दिखाता है वा जो कुछ सुना जाता है उस से आत्मा में एक प्रकार की वासना उत्पन्न हो जाती है । निद्रा लग जाने पर इसी वासना के प्रभाव से जो संसार देख पड़ता है वही स्वप्न अवस्था को कोई सूक्ष्म

शरीर के अभिमान करने वाले प्रकाशमान भोक्ता और साक्षी आत्माको तैजस कहते हैं॥

(मूल) अतः सुषुप्त्यवस्था का? अहं किमपि न जानामि, सुखेन मया निद्रानुभूयत इति सुषुप्त्यवस्था। कारणशरीराभिमानीआत्मा प्राज्ञ इत्युच्यते॥ मकारः

(अर्थ) सुषुप्ति अवस्था किसे कहते हैं? "मैं कुछ नहीं जानता" "मैंने बड़े सुख से निद्रा की" यह ज्ञान जिस अवस्था में होता है वह अवस्था स्वप्न कहाती है। तात्पर्य यह है

कि सुषुप्ति अवस्था में निद्रा सुख के सिवाय और किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता । तब भी आत्मा का प्रकाश बना रहता है । इससे सुषुप्ति के बाद कहना है कि "मैं सुख से सोया मुझे और कुछ नहीं जान पड़ता था ।" यह कहना ही इस बात की साक्षी है कि उसे उस समय भी सूक्ष्मज्ञान था, परन्तु निद्रा के वेग से वह स्पष्ट २ किसी वस्तु का ज्ञान नहीं कर सकता था । सुषुप्ति के बाद फिर पूर्व ज्ञान लौट आता है । इससे जिस समय विशेष ज्ञान न हो केवल ज्ञान ही हो उस समय को सुषुप्ति कहते हैं । इस अवस्था को कारणशरीर और आनन्दमयकोश भी कहते हैं । कारण-शरीरके अभिमानी आत्माको प्राज्ञअर्थात इन्द्रियों की सहायता के बिनाही स्वप्न कथासे वासनारूप विषयों का भोगनेवाला आत्मा कहते हैं ॥१६॥

(मूल) पञ्चकोशाः के ?। अन्नमयः प्राणमयोमनोमयो विज्ञानमय आनंदमयश्चेति ॥ २० ॥

(अर्थ) पाचों कोश कौन २ हैं ?। अन्नमय कोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमय कोश, और आनन्द मयकोश, ये पाचों कोश हैं। कोश शब्द का अर्थ है आच्छादन करना, और ये पाचों आत्मा के अच्छादन करनेवाले हैं इससे कोश कहाते हैं ॥ २० ॥

(मूल) अन्नमयः कः ? अन्नरसेनैव भूत्वा अन्नर

सेनैव वृद्धिं प्राप्यान्नरूपपृथिव्यां यद्विलीयते तदन्नमयःकोशः स्थूलशरीरम् २१

(अर्थ) अन्नमयकोश किसे कहते हैं ?। अन्न के रस सेही जो उत्पन्न होता है, अन्न के रस में ही जो बढ़ता है, और अन्नरूप पृथ्वी में जो लीन हो जाता है उसे अन्नमय कोश अर्थात् स्थूलशरीर कहते हैं ॥ २१ ॥

(मूल) प्राणमयः कोशकः? प्राणादि पंचवायवो वागादीन्द्रियपञ्चकं प्राणमयःकोश

(अर्थ) प्राणमय कोश किसे कहते हैं ?

प्राण, अपान, व्यान, समान और उदानरूप पाँचों प्राणवायु समूह को, और वाक् पाणि पाद पायु औ' उपस्थ रूप पाचों कर्मेन्द्रियों को प्राणमय कोश कहते हैं। प्राणमय कोश का दूसरा नाम क्रियाशक्तिभी है। क्योंकि प्राण मय कोश के सहारे ही शरीर की सब क्रिया होती है॥

(मूल) मनोमयः कोशः कः ? मनश्च ज्ञानेन्द्रियपंचकं मिलित्वा भवति स मनोमयः कोशः ॥ २३ ॥

(अर्थ) मनोमय कोश किसे कहते हैं। मन और श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा और घ्राण रूप पांचों ज्ञान इन्द्रियों के मिलने से जो कोश

होती हैं उसे मनोमयकोश कहते हैं। इसे इच्छा-शक्ति भी कहते हैं। मनोमयकोश की सहायता से ही आत्मा में इच्छा उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि मन का स्वरूप ही संकल्प विकल्प-वाला है। और संकल्प विकल्प इच्छा रूप है। इस लिये आत्मा में इच्छा का होना मनोमय-कोश की सहायता से होती है॥ २३ ॥

[मूल] विज्ञानमयःकोशकः?। बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियपंचकं मिलित्वा यो भवति स विज्ञानमयः कोशः॥ २४ ॥

(अर्थ) विज्ञानमयकोश किसे कहते हैं? बुद्धि और श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा और घ्राण-रूप पांचों ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से जो कोश

उत्पन्न होता है, उसे विज्ञानमयकोश कहते हैं। इसका दूसरा नाम ज्ञान शक्ति भी है। क्योंकि बुद्धि और पांचों ज्ञानइन्द्रियों की ही सहायता से आत्मा को सब पदार्थों का ज्ञान होता है ॥२४॥

[मूल] आनंदमयः कः ?। एवमेवकारणशरीरभूता विद्यास्थमलिनसत्वं प्रियादि वृत्तिसहितं सदानदंमयःकोशः। एतत्कोशपंचकम्। मदीयं शरीरं मदीयाः प्राणाः मदीयं मनश्च मदीया बुद्धिर्मदीयं ज्ञानमितिस्वेनैव ज्ञायते।

तद्यथा मदीयत्वेन ज्ञातं कट
ककुंडलगृहादिकं स्वस्माद्भि
न्नं, तथा पंचकोशादिकं म
दीयत्वेन ज्ञातमात्मा न भ
वति ॥ २५ ॥

(अर्थ) आनन्दमयकोश किसे कहते हैं ? इसी भांति कारणशरीररूप अविद्या में रहने वाला, रज और तम गुण के संयोग से मलिन और प्रिय तथा मोद आदि वृत्तिवाला जो कोश है उसे आनन्दमयकोश कहते हैं। इस कोशका आनन्दमयकोश नाम इसी कारण से हुआ है कि यह प्रिय और इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से मुदित और सुखित होता है। जब मोद

और सुख होना है तो आनन्द की यात्रा अधिक मालूम पड़ती है। बस यही कारण है है कि इसे आनन्दमय कोश अर्थात् अधिक आनन्दवाली अवस्था कहते हैं। पहिले कहे गये पांचों कोश पञ्चकोश कहे जाते हैं। आत्मा स्वयं 'मेरा शरीर' 'मेरे प्राण, मेरा मन' मेरी बुद्धि' और 'मेरा ज्ञान यह जानता है। यही ज्ञान आत्मा को शरीर आदि से भिन्न करता है जैसे 'मेरा गृह' 'मेरा कंकण' और 'मेरा कुंडल यह ज्ञान गृह आदि को ज्ञाता से भिन्न सिद्ध करता है, न कि वे स्वयं ज्ञाता बन जाते हैं, ऐसे ही 'मेरा शरीर' इत्यादि ज्ञान भी अपने को ज्ञाता से भिन्न सिद्ध करते है। यह सिद्धि नम' शब्द के प्रभाव से होती हैं। कोई भी कदापि ऐक्य होने पर मेरा शब्द नहीं कहता जहाँ आप अलग रहकर केवल अपना सम्बन्ध

जनाना रहना है, वही ' मेरा शब्द बोला जाता है। 'मेरी पुस्तक 'मेरी लेखनी' इत्यादि शब्दों का यही अर्थ है कि लेखनी मुझसे भिन्न है, परन्तु मेरा इसके साथ स्वामिपना का सम्बन्ध है। तस्मात् ' मम शब्द के उच्चारण करने वाले के सम्बन्धी समझे जाते हैं,. वैसेही मेरे पाँचों कोश' इस प्रकार से ज्ञाता के सम्बन्ध वाले पंच कोस आत्मा उनसे भिन्न है। उनका साक्षी है- और पंचकोश माया के खिलवाड हैं। यह वार्त्ता सिद्ध हो गई ॥२५॥

(मूल) आत्मा तर्हि कः? सच्चिदानन्दस्वरूपः ॥२६॥

(अर्थ) तब आत्मा किसे कहते हैं? जो सतरूप और आनन्दरूप है उसे आत्मा कहते हैं ॥ २६ ॥

(मूल) सत्-किम् ? काल त्रयेऽपि तिष्ठतीति सत् । चित्-किम् ? ज्ञानस्वरूपः । आनन्दः कः । सुखरूपः । एवं सच्चिदानन्दस्वरूपमात्मानं विजानीयात् ॥२७॥

(अर्थ) सत् किसे कहते हैं ? भूतकाल, भविष्यकाल, और वर्तमानकाल में जो बिगड़ता नहीं किन्तु सदा एक रस रहता है, उसे सत् कहते हैं। चितशब्द का क्या अर्थ है ? जो ज्ञानस्वरूप है उसे चित कहते हैं। चितशब्द का अर्थ है प्रकाश और प्रकाश ज्ञान में रहता

है। इससे ज्ञानस्वरूप से जो सत्र का अनुभव करनेवाला है, वही चित्‌शब्द का अर्थ है। आनन्दशब्द का क्या अर्थ है ? जो सदा सुखरूप है वह आनन्दशब्दका अर्थ है। अर्थात् जो कभी भी दुःख से छुआ नहीं जाता वही कूटस्थपरब्रह्म नित्यानन्दरूप है, और उसेही दूसरे शब्द में सुखरूप कहते हैं। इस भांति आत्मा को सत्‌रूप, चित्‌रूप, और आनन्दरूप जाने। तात्पर्य यह है कि आत्मा को नित्य ज्ञानस्वरूप और कूटस्थ समझ कर जगत् को मिथ्या समझे ॥ २७ ॥

(मूल) अथ चतुर्विंशति तत्त्वोत्पत्तिप्रकारं वक्ष्यामः॥

(अर्थ) अब (मैं) माया से उत्पन्न होने

वाले चौबीस तत्त्वों की उत्पत्ति के उपाय को कहता हूं ॥ २८ ॥

(मूल) ब्रह्माश्रयात्सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका माया अस्ति ॥ तत आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः । वायोस्तेजः । तेजस आपः । अद्भ्यः पृथिवी ॥ २९ ॥

(अर्थ) सत्वगुण रजगुण और तम गुणवाली और पर ब्रह्म के आधार पर रहने वाली माया है अर्थात जब सत्व रज और तम रूप गुणों में किसी प्रकार की न्यूनता वा

अधिकता नहीं जान पड़ती किन्तु केवल समा नता मालूम पड़ती है, उसी अवस्था का नाम माया है। सांख्यमत वाले इसेही मूल प्रकृति, प्रधान और स्वभाव आदि शब्दों से स्मरण करते हैं। इसी माया के सहायक ब्रह्म के प्रभाव से आकाश उत्पन्न होता है आकाश से वायु उत्पन्न होता है वायु से तेज उत्पन्न होता है। तेज से जल उत्पन्न होता है। जल से पृथिवी उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि माया एक प्रकार की शक्ति है। जिसके सम्बन्धभ्रम से परब्रह्म में एक प्रकार की कर्तृता जान पड़ती है। वह कर्तृता सम्बंधभ्रम से जान पड़ती है, इससे प्रथम आकाश उत्पन्न होता है। आकाश एक पोला पदार्थ है इससे उसमें वायु उत्पन्न होजाता है। वायु और आकाश की परस्पर रगड़ से अग्निरूप तेज उत्पन्न होता है। अग्नि

की उष्म से वाष्परूप जल उत्पन्न होता है। जल के परस्पर की रगड़ से पृथिवी उत्पन्न होती है ॥ २६ ॥

(मूल) एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य सात्त्विकांशाच्छ्रोत्रेन्द्रियं सम्भूतम्। वायोःसात्त्विकांशात्त्वगिन्द्रियं सम्भूतम् । अग्नेः सात्त्विकांशाच्चक्षुरिन्द्रियं सम्भूतम् । जलस्य सात्त्विकांशाद्रसनेन्द्रियं सम्भूतम्।

पृथिव्याः सात्त्विकांशात्घ्रा
णेन्द्रियं सम्भूतम्। एतेषां प
ञ्चतत्त्वानां समष्टि सात्त्वि
कांशान्मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ता
तः करणानि सम्भूतानि३०

(अर्थ) इन पाचों तत्त्वों में से आकाश के सत्त्वगुण के भाग से श्रवण (कान) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। वायु के सत्त्वगुण से त्वक् (स्पर्श) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। अग्नि के सत्त्वगुण के भाग से चक्षु (नेत्र) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। जल के सत्त्वगुण के भाग से रसना (जिह्वा) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। इन आकाश आदि पाचों तत्त्वों के मिले हुऐ

सत्त्वगुण के भाग से मन बुद्धि अहंकार और चित्तरूप चार अन्तःकरण उत्पन्न हुए हैं ॥३०॥

[मूल] सङ्कल्पविकल्पात्मकं मनः। निश्चयात्मिका बुद्धिः। अहङ्कर्ता अहङ्कारः चिंतनकर्तृ चित्तम्। मनसो देवता चंद्रमाः। बुद्धेर्ब्रह्मा। अहङ्कारस्य रुद्रः। चित्तस्य वासुदेवः॥ ३१ ॥

(अर्थ) चार प्रकार अन्तःकरण में मन उसे कहते हैं, जिससे 'यह काम करूँ ऐसा

सन्देह उत्पन्न होता है। 'यह कार्य अवश्य कर्तव्य है' यह ज्ञान जिससे होता है, । उसे बुद्धि कहते हैं। यह कार्य किया' यह अहं-कार रूप ज्ञान जिससे होता है उसे अहंकार कहते हैं संपूर्ण पदार्थों की जिससे चिन्ता व विचारहोताहै उसे चित्त कहते हैं । यद्यपि अन्तःकरण एकहीं है, तो भी संकल्प, निश्चय, अहंकार और चिन्तनरूप कार्य के भिन्न २ होने से चार प्रकार कहा जाता है। मन की देवता चंद्रमा है । बुद्धि की देवता ब्रह्मा है। अहंकार की देवता रुद्र (महादेव) है चित्तकी देवता वासुदेव (विष्णु) हैं॥ ३१ ॥

(मूल) एतेषां पञ्चतत्त्वा नां मध्ये आकाशस्य राज

सांशाद्वागिन्द्रियं सम्भूतम्
वायोराजसांशात्पाणीन्द्रियं सं
भूतम् वह्नेःराजसांशात्पादेंद्रियं
संभूतम् । जलस्यराजसांशा
दुपस्थेंद्रियं संभूतम्।पृथिव्या
राजसांशाद्गुदेंद्रियं संभूतम्
एतेषां समष्टिराजसांशात्प
ञ्च प्राणाः संभूताः ॥ ३२ ॥

(अर्थ) इन पांचों तत्त्वोंके मध्य में से आकाशके रजगुणभाग से वाक् (वाणी) न्द्रिय उत्पन्न हुई है वायु के रजगुणभाग से

पाणि (हाथ) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। अग्नि के रजगुण के भाग से पाद (पैर) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। जल के रजगुण के भाग से उपस्थ (पुरुष) इन्द्रिय उत्पन्न हुई है पृथिवी के रजगुण के भाग से गुदा इन्द्रिय उत्पन्न हुई है। इन आकाश आदि पाचों भूतों के मिले हुए रजगुण के भाग से प्राण अपान व्यान समान और उदान नाम के पांच प्राण उत्पन्न हुए हैं ॥ ३२ ॥

(मूल) एतेषां पञ्चतत्त्वानां तामसांशात्पञ्चीकृतपञ्चभूतानि भवन्ति ॥ ३३ ॥

(अर्थ) आकाश आदि पांचों महाभूतों के तम गुण के भाग से पञ्चीकरण किये गये पांच

तत्त्व उत्पन्न होते हैं। इस भांति चौबीस तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इनमें आकाश आदि पांचों महाभूतों के सत्त्वगुण के भाग से पांच ज्ञान इन्द्रिय और चार अंतःकरण उत्पन्न होते हैं। सबके योग से नव तत्त्व होते हैं। इसी प्रकार आकाश आदि पांचोंके रजगुण के भाग से पांच कर्म इंद्रिय और पांच प्राण उत्पन्न होते हैं। जोडने से दश तत्त्व हुए उसी भांति पांचों भूतों के तमगुण के भाग से पांच पञ्चीकृत तत्त्व उत्पन्न हुए। अब सबकी संख्या को जोडने से चौबीस संख्या हो जाती है॥ ३२॥

[मूल] पञ्चीकरणं कथमिति चेत् ?। एतेषां पञ्चम-

हाभूतानां तामसांशस्वरूपं
एकमेकं भूतं द्विधा बिभज्य,
एकैकमर्धं पृथक् तूष्णीं व्यव
स्थाप्य, अपरमपरमर्धं चतु
र्धा विभज्य स्वार्धमन्येष्वर्धे
षु स्वभागचतुष्टयसंयोजनं
कार्यम्।तदा पञ्चीकरणं भव
ति। एतेभ्यः पञ्चीकृतपञ्च
महाभूतेभ्यः स्थूलशरीरं भ
वति। एवं पिण्डब्रह्माण्ड
योरैक्यं सम्भूतम् ॥ ३४ ॥

(अर्थ) पंचीकरण किस प्रकार होना है ? इसका उत्तर यह है कि इन पांचों महाभूतों के तमगुण रूप एक २ भूत भाग को दो २ भाग में बांट देना। इन बांटे हुए दोनों भागों में से एक २ भाग को चुपचाप अलग कर देना। बांकी के एक भाग को चार भागों में बांट देना। अब अलग रखे हुए अपने आधे भाग को इन भागों में मिला देना। यही पंचीकरण होता है। यदि कहोगे कि इस प्रकार के मिलान तो सब महाभूतों में सबका भाग आगया। अब 'यह पृथिवी है' 'यह आकाश है' यह भेद कैसे सिद्ध होवेगा ? तो इसका यह समाधान है कि, अवश्य एक २ में औरों का भाग आजाता है तब भी जिसमें जिसका भाग अधिक होता है उसका वही नाम होता है। जिसमें पृथिवी का भाग अधिक रहेगा और औरों का कम होगा

वह पृथिवी। इस प्रकार औरों में भी जानो। जैसे 'पहलवानो का ग्राम' यह कहने से सुननेवाला समझता है कि 'इस ग्राम में पहलवान अधिक हैं और दूसरे जाती के लोग कम हैं' वैसेही महाभूतों के विषय में समझना उचित है। इन पंचीकृत पांचभूतोंसे स्थूलशरीर उत्पन्न होता है। इस प्रकार पिंड (स्थूल शरीर) और ब्रह्मांड की एकता सिद्ध होती है। ब्रह्मांड भी स्थूलशरीर के समान पंचीकृत पांच महाभूतों से उत्पन्न होता है॥ ३४॥

मूल-स्थूलशरीराभिमानी जीवनामकं ब्रह्मप्रतिबिंबं भवति स एव जीवः प्रकृत्या स्वस्मा

त् ईश्वरं भिन्नत्वेन जाना
ति। अविद्योपाधिः सन्ना
त्मा जीव इत्युच्यते ॥३५॥

(अर्थ) स्थूलशरीर का अभिमान करने वाला अर्थात् उसे अपना समझनेवाला ब्रह्म का प्रतिबिंब जीव कहलाता है। वह अपने स्वभाव के अनुसार ईश्वर को अपने रूप से भिन्न समझता है अविद्याके संयोग से आत्मा जीव कहा जाताहै। तात्पर्य यह है कि जीव वस्तुतः ब्रह्म ही है, परन्तु वह जब स्थूल शरीर में अभिमान करता है तब दर्पण के प्रतिबिम्ब के समान वह जीव समझा जाता है। प्रति-बिम्ब होने के कारण अज्ञान है। जैसे थाली में भरे हुए जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब (पर-

छाहीं) देखकर लोग उसे तब तक आकाश में रहनेवाले सूर्य से अलग समझते हैं जबतक थाली हटा नहीं ली जाती। परन्तु थाली के हटते ही प्रतिबिम्ब का दर्शन नहीं होता केवल सूर्य रह जाता है वैसेही स्थूलशरीर के अभिमान के नाश हो जाने पर जीव नाम नहीं रहता। तब इस अज्ञान का कारण अज्ञानही है। इसी से जीवाभिमानी आत्मा ईश्वर को दूसरा समझता है। और अज्ञान से भये कार्य को अपना कार्य समझकर उनके शुभ और अशुभ कर्मों को भोगता है। तात्पर्य यह कि अविद्या से घिरा हुआ आत्मा ही जीव है वह और नहीं है। जब अविद्या का नाश हो जाता है अर्थात जब ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब वही अपने को ब्रह्म २ कहने लगता है। जैसे कोई पुरुष अपने गले में पड़े हार को अज्ञान से खोया

हुआ समझकर उसे ढूढ़ता फिरता है परन्तु जब उसका हाथ अपने गले पर फिर जाता है तब वह चुपचाप अपनी राह लग जाता है, किसी से कुछ नहीं कहता, वैसे ही जीव भी ज्ञान होने पर अपने स्वरूप को देखने लग जाता है इसी स्वरूप दर्शन को ब्रह्म प्राप्ति कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि माया और अविद्या ही स्थूलशरीर के अभिमान में आत्मा के जीव रूप प्रतिबिम्ब होने में और ब्रह्म को जीव नाम धरने में कारण है। माया और अविद्या का भेद इतनाही है कि सत्वगुण की अधिकता में माया नाम है रज वा तमगुण की अधिकता में अविद्या नाम है॥ ३५॥

(मूल) मायोपाधिः सन्नी श्वर इत्युच्यते एवमुपाधिभेदा

उजीवेश्वरभेददृष्टिर्यावत्पर्य
न्तं तिष्ठति तावत्पर्यन्तं ज
न्ममरणादिरूपसंसारो न नि
वर्तते । तस्मात् कारणान्न
जीवेश्वरयो भेदबुद्धिः स्वी
कार्या ॥३६॥

(अर्थ) माया में जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, उसे ईश्वर कहते हैं। इसेही नैयायिक लोग जगत् का कर्ता अर्थात् निमित्तकारण कहते हैं इस प्रकार अविद्या और माया रूप धर्म के भेद से जबतक अविद्या में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को जीव, और माया में ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को ईश्वर कहा करते हैं तब तक संसार से छुटकारा

नहीं होता। संसार का अर्थ है बार बार जन्म
ना और मरना। और वह तब तक बराबर बना
रहता है। जब तक भेद बुद्धि नहीं छूटती।
इस लिये जीव और ईश्वर को भिन्न नहीं सम-
झना, किन्तु उन दोनों के भेद को मिथ्या
समझकर एकता बुद्धि करनी ॥ ३६ ॥

(मूल) ननु साहंकारस्य कि-
ञ्चिज्ज्ञस्य जीवस्य निरहं
कारस्य सर्वज्ञेश्वरस्य तत्त्वम
सीति महावाक्यात्कथमभे
दबुद्धिःस्यादुभयोर्विरुद्धधर्मा
क्रान्तत्वात् ? ॥ ३७ ॥

[अर्थ] यहां यह शंका होती है कि जीव का स्वरूप अहंकारी और अल्पज्ञ है, और ईश्वरका स्वरूप निरहंकारी और सर्वज्ञ है। इन दोनोकी एकता 'तत्त्वमसि' 'तूं वही है' इस महावाक्य से कैसे होवेगी। क्योंकि यह दोनो भिन्न२ धर्म वाले हैं? जो२ भिन्न धर्मवाले होते हैं उनकी एकता कभी नहीं होती। जैसे अग्नि और जल इनकी एकता नहीं होती ॥ २७ ॥

[मूल] इति चेन्न। स्थूल सूक्ष्मशरीराभिमानी त्वं पद वाच्यार्थः उपाधिदशाविनि मुक्तं समाधिदशासम्पन्नं शु द्धं चैतन्यं त्वं पदलक्ष्यार्थः

(अर्थ) इस शंका का यह समाधान है कि स्थूल और सूक्ष्मशरीर का जो अभिमानी है वह त्वं शब्द का वाच्य अर्थ है और माया तथा अविद्या धर्मसे रहित और समाधि अवस्थावाला शुद्ध चैतन्य त्वं शब्द का लक्ष्य अर्थ है। अब विचारना चाहिये कि त्वं शब्दका ही दोनों अर्थ हुआ। एक वाच्य अर्थ और दूसरा लक्ष्य अर्थ वाच्य और लक्ष्य दो नहीं होते। जैसे घटशब्दका वाच्यअर्थ घड़ा है और लक्ष्य अर्थ मृत्तिका है। दोनों एकही हैं, जोघड़ा है वही मृत्तिका है। और जो मृत्तिका है वही घड़ा है। ऐसेही तत् शब्दकाभी वाच्य अर्थ माया और अविद्यावाला जीवहै और लक्ष्य अर्थ शुद्ध ब्रह्म है। अब हमें 'तत्त्वमसि' इस वाक्यकी और देखना चाहिये कि इसका क्या अर्थ है? इसके विचारसे हमें यह जान पड़ता है कि 'जो सर्वज्ञ ईश्वरहै वही तू है'। इस अर्थके देखने से हमें

यह स्वीकार करना पड़ताहै कि जीवब्रह्मकी एकता जाननेके समय दोनोंमें कोई धर्मका ज्ञान बाकी नहीं रहता इससे कोई शंका नहीं बच जाती।३८।

[मूल] एवं सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वरस्तत्पदवाच्यार्थ उपाधिशून्यंशुद्धचैतन्यं तत्पदलक्ष्यार्थः । एवं च जीवेश्वरयोश्चैतन्यरूपेण भेदे बाधकाभावः ॥ ३९ ॥

(अर्थ) इस भांति सर्वज्ञ आदि धर्मवाला ईश्वर ततशब्द वाच्य अर्थ है, और सर्वज्ञत्व आदि धर्मके विना जो शुद्ध चैतन्य है वह तत

शब्दका लक्ष्य अर्थ है। ईस प्रकार धर्मवाले ईश्वर की एकता मे कोई दोष नहीं आता। क्यों कि धर्मकी अलग करदेने में दोनों ओर चैतन्य मात्र रहता है और स्वभावसे ही एक हैं ॥३६॥

(मूल) एवं च वेदांतवाक्यैः सद्गुरूपदेशेन च सर्वेष्वपि भूतेषु येषां ब्रह्म बुद्धिरुत्पन्ना ते जीवमुक्ता इत्यर्थः ॥४०॥

(अर्थ) इस प्रकार 'तू वही है' मैं ब्रह्म हूं' इत्यादि वेदान्त के महावाक्यों से और सद्गुरुके उपदेश से जिनको सब प्राणियों में ब्रह्मज्ञान हो गया है वही जीवन्मुक्त है। आशय यहहै किजीवन्मुक्तवही महापुरुषहैं जिसेब्राम्हण गौहाथीकुत्ता

और श्वपाकमें अपनाही स्वरूप दिखाता है। इस समय नतो उसे स्पर्शास्पर्श का विचार होता है, न वह ब्राम्हणको पवित्र और कुत्ते को अपवित्र समझता है, न उसे किसी वस्तुके लाभसे हर्ष होता है न किसी के नष्ट होनेसे दुःखहोताहै, और न वह अपने औरपरायेमें कुछ अन्तर समझता है। वह इस समय जनकके समान कहदेताहै कि 'यदि सब मिथिला पुरी ही भस्म होजावे तो भी मेरा कुछ भी भस्म नहीं होगा'। तात्पर्य यह कि वह सब द्वंद्वो से छूट जाता है॥

मूल--ननु जीवन्मुक्तः कः?। यथा ऽहं पुरुषोऽहं ब्राह्मणोऽहं शूद्रोऽहमस्मीति दृढनिश्चय स्तथा। नाहं ब्राह्मणो न शू

द्रो न पुरुषः किं त्वसंगः स
च्चिदानंदरूपः प्रकाशरूपः
सर्वान्तर्यामी चिदाकाशरूपो
स्मीति दृढनिश्चयरूपापरो
क्षज्ञानवान् जीवन्मुक्तः ४१

(अर्थ) जीवन्मुक्त किसे कहते है ?। जैसे मैं देह हूं' 'मैं पुरुषहूं' मैं। ब्राम्हण हूं' और 'मैं शूद्र हूं' यह दृढ निश्चयहै, इसी भांति 'न मैं ब्राम्हण हूं 'न शूद्र हूं' और 'न पुरुष हूं' किन्तु मैं किसी से सङ्ग न रखने वाला, सत् चित और आनन्द स्वरूप वाला, प्रकाशस्वरूपवाला, सब जीवोंका अन्तर्यामी, और चित्तप्रकाशस्वरूप हूं यह दृढ ज्ञान कांप्रत्यक्ष जिसे होता है वही जीवन्मुक्त है ४१

(मूल) ब्रह्मैवाहमस्मि इत्यपरोक्षज्ञानेन निखिलकर्मबंधविनिर्मुक्तः स्यात् ॥४२॥

(अर्थ) 'मैंब्रह्मही हूं' इस प्रत्यक्षज्ञान के होजानेसे सब प्रकारके कर्मोंके बन्धनों से छूट जाता है ४२

[मूल] कर्माणि कति विधानि संति ? इति चेत्। आगामिसञ्चितप्रारब्धभेदेन त्रिविधानि संति ॥ ४३ ॥

(अर्थ) कम कै प्रकारके हैं?। इसका उत्तर यह है कि,कर्मतीन प्रकार हैं। प्रथम आगामिकर्म द्वितीय संचितकर्म और तृतीय प्रारब्ध कर्म है॥४३॥

[मूल] ज्ञानोत्पत्त्यनंतरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति तदागामीत्यभिधीयते ॥४४॥

(अर्थ) ज्ञान हो जाने के बाद ज्ञानी के शरीर से किया गया जो पुण्य और पाप कर्म है वह आगामिकर्म कहा जाता है ॥ ४४ ॥

मूल-सञ्चितं कर्म किम् ?

अनंतकोटिजन्मनां बीजभूतं सद्यत्कर्मजातं पूर्वार्जितं तिष्ठति तत्सञ्चितं ज्ञेयम् ४५

(अर्थ) संचित कर्म किसे कहते हैं ? अनेक करोड़ जन्मों का जो बीज अर्थात् मुख्य कारण है, और जो अनेक जन्मों से बटोरा गया है उसे संचित कर्म कहते हैं ॥ ४५ ॥

मूल-प्रारब्धकर्म किमिति ? चेत् । इदं शरीरमुत्पाद्य इह लोके एव सुखदुःखादिप्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं, भोगेन नष्टं भवति । प्रारब्धकर्मणा भोगादेव क्षय इति ॥

(अर्थ) प्रारब्ध कर्म किसे कहते हैं ? । जो कर्म इस शरीर को उत्पन्न करता है, और

इस लोक में अनेक प्रकार के सुख और दुःख देता है उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। प्रारब्ध कर्म का भोग करने से ही नाश होता है क्योंकि कहा है कि 'प्रारब्ध कर्मों का भोग करने से ही क्षय होता है' वस्तुतः ज्ञान होने पर उसका भी नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥

मूल-सञ्चितं कर्म ब्रम्हैवाहमस्मीति निश्चयात्मकज्ञानेन नश्यति। आगामिकर्मापि ज्ञानेन श्यति। किञ्चागामिकर्मणां नलिनीदलगतजलवत् ज्ञानिनां सम्बन्धो नास्ति

(अर्थ) 'मैं ब्रह्म ही हूं' इस दृढ ज्ञान से संचित कर्म नष्ट हो जाता है। आगामि कर्म भी इसी ज्ञान से नष्ट हो जाता है। और आगामि कर्म का ज्ञानी के साथ उसी प्रकार सम्बन्ध नहीं होता जैसे कमल के पत्ते से जल का सम्बन्ध नहीं रहता ॥ ४७ ॥

(मूल) किञ्च ये ज्ञानिनं स्तुवन्ति भजंति अर्चयंति तान्प्रति ज्ञानिकृतमागामिपुण्यं गच्छति। ये ज्ञानिनं निंदंति द्विषंति दुःखप्रदानं कुर्वंति तान्प्रति ज्ञानिकृतं स

वंमागामिक्रियमाणं यद्वा
च्यं कर्म पापात्मकं तद्ग-
च्छति ॥ ४८ ॥

[अर्थ] और भी लोग ज्ञानी की स्तुति करते हैं, सेवा करते हैं और पूजा करते हैं, ज्ञानी का किया हुआ आगामी पुण्य उन्हें मिलता है। जो लोग ज्ञानी की निन्दा करते हैं, उनसे वैर करते हैं. और उन्हें दुःख देते हैं. ज्ञानी का किया हुआ सब आगामी पाप उन्हें मिलता है ॥ ४८ ॥

(मूल) तथा चात्मावित्संसा
रं तीर्त्वा ब्रह्मानंदमिहैव प्रा

प्नोति । तरति शोकमा
त्मावि दिति श्रुतेः ॥ ४९ ॥

(अर्थ) इस प्रकार आत्मज्ञानी संसार सागर से पार होकर इसी जन्म में ब्रह्मानंद को पाता है। क्योंकि ब्रह्मज्ञानी शोक समुद्र को पार कर जाता है यह श्रुति में लिखा है ॥ ४९ ॥

(मूल) तनुं त्यजतुवा का
श्यांश्व पचस्य गृहेऽथ वा।
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽ
सौविगताशयः इति स्मृते
श्च ॥ ५० ॥

[अर्थ] चाहे काशी में शरीरपात होवे, अथवा चांडाल के घर में शरीरपात होवे, ज्ञान की प्राप्ति होते ही अन्तःकरण के मलोंसे शुद्ध होकर ज्ञानी मुक्त होता है।

इति तत्त्वबोध प्रकरणं समाप्तम्।